वर्ष 36 अंक 1 जनवरी 2022

बुद्धिवादी

बुद्धिवादी, मानवतावाद, निरीश्वरवाद और धर्मनिरपेक्षता के प्रसार के लिए
बुद्धिवादी फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित पत्रिका

इस अंक में

ब्राह्मणवाद का विरोध क्यों और कैसे? 1

- आज के हालात और हमारी भूमिका 4
- जनतंत्र समाज (Citizens for Democracy-CFD), बिहार, की पटना बैठक 5

स्त्री-विमर्श 6

- दार्शनिकों में महिला दार्शनिकों का लगभग नगण्य प्रतिनिधित्व 7
- भारत में महिला स्वातंत्र्य आंदोलन की दशा और दिशा 10
- सवालों के घेरे में - महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के मुकाबले पीछे हैं! 11
- इतिहास के घेरे में 12
- कनक : स्मृति शेष 13
- पुस्तक परिचय : स्त्रीशब्द 13
- स्त्री-पुरुष तुलना 14

सम्पादक मंडल
डॉ. रमेंद्र
डॉ किरन नाथ
डॉ. कवलजीत कौर

सम्पादकीय सहायक
प्रिया नाथ
ललित कुमार

216 -ए, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001
Email: dr.ramendra.nath@gmail.com
kawaljeetkaur.patna@gmail.com
Visit the Facebook Page of
Buddhiwadi Foundation

ब्राह्मणवाद का विरोध क्यों और कैसे?

डॉ. रमेन्द्र

"ब्राह्मणवाद का विरोध क्यों और कैसे?" – इस विषय पर कोई चर्चा करने से पहले "ब्राह्मणवाद" शब्द का अर्थ स्पष्ट करना जरूरी है.

ब्राह्मणवाद क्या है?

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि ब्राह्मणवाद ब्राह्मणों की धार्मिक विचारधारा है. परम्परागत रूप से "सनातन धर्म" या ब्राह्मण धर्म में सिर्फ ब्राह्मण जाति में जन्मे पुरुष ही पुरोहित का काम कर सकते हैं. आज के समय इसे "हिन्दू धर्म" भी कहा जा रहा है, जबकि इस धर्म के धर्म ग्रंथों में कहीं भी "हिन्दू" शब्द का इस्तेमाल नहीं हुआ है!

ब्राह्मणवाद के मूल तत्व निम्नलिखित हैं :
एक, वेदों की प्रामाणिकता में विश्वास;
दो, वर्ण-व्यवस्था;
तीन, अवतारवाद. कर्मवाद, मोक्षवाद, आदि.

इनमे से **सामाजिक** दृष्टि से जो सबसे महत्त्वपूर्ण है वह है : वर्ण-व्यवस्था, जिसका सीधा सम्बन्ध जाति-व्यवस्था से है, जो "हिन्दू" समाज की सबसे बड़ी बुराई है. सामाजिक दृष्टि से "ब्राह्मणवाद" का अर्थ है **"वर्ण-व्यवस्था की विचारधारा"**, जो जाति-व्यवस्था को एक सैद्धान्तिक आधार प्रदान करती है.
मनुस्मृति एक प्रमुख ब्राह्मणवादी धर्म-शास्त्र है. इसके विश्लेषण से हमे ब्राह्मणवाद के चरित्र की जानकारी मिल सकती है :
1. इसमें समाज को जन्म के आधार पर चार वर्णों में बाँट दिया गया है : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र.

2. इनमें प्रतिष्ठा के आधार पर, ब्राह्मणों को सबसे ऊपर, उससे नीचे क्षत्रिय, उसके नीचे वैश्य और सबसे नीचे शूद्र को रखा गया है. ऐसा दावा किया गया है कि ब्राह्मण इस "विश्व के रचनाकार" ब्रह्मा के मुख से निकले हैं, और शूद्र पैर से!

3. चार वर्णों में से प्रथम तीन – शूद्र को छोड़ कर – "द्विज" माने गए हैं. सिर्फ द्विज पुरुषों को उपनयन और वेदों को पढने का अधिकार दिया गया है. इनमे भी, वेदों को पढ़ाने का अधिकार सिर्फ ब्राह्मण पुरुषों को दिया गया है.
महिलाओं और शूद्रों को पढने के अधिकार से वंचित किया गया है.

4. चारो वर्णों के पुरुषों के लिए अलग अलग "वर्ण-धर्म" और व्यवसाय निर्धारित कर दिये गये है. शिक्षकों और पुरोहित का काम ब्राह्मण पुरुषों के लिए पूर्णतः (सौ परसेंट) आरक्षित कर दिया गया है.

5. मनुस्मृति में औरत-मर्द गैरबराबरी का समर्थन किया गया है. औरत को शिक्षा से तो वंचित किया ही गया है; साथ ही, उन्हें स्वतंत्र होने लायक भी नहीं समझा गया है. हमेशा पुरुष के नियंत्रण में रहे – पिता, पति या पुत्र! कभी भी स्वतंत्र ना रहे.

6. इसमें अलग-अलग वर्णों के लिए अलग-अलग कानून बतलाये गये हैं. एक ही "अपराध" के लिए शूद्र को कठोर सजा और ब्राह्मण के लिये हल्की सजा का प्रावधान है. इसी तरह, एक ही "अपराध", अगर शूद्र के विरुद्ध किया गया हो, तो हल्की सजा, और अगर ब्राह्मण के विरुद्ध किया गया हो, तो कठोर सजा का विधान है.

7. इसमें एक वर्ण और दूसरे वर्ण के बीच विवाह पर प्रतिबंध लगाया गया है.

8. इसमें छुआछूत का समर्थन किया गया है.

9. इसमें वर्ण-व्यवस्था को ईश्वर द्वारा निर्मित बतला कर धार्मिक मान्यता प्रदान की गयी है.

मनु के अनुसार, ब्रह्मा ने ही इस विश्व की रचना की, ब्रह्मा ने ही चारो वर्णों की रचना की, ब्रह्मा ने ही मनुस्मृति की रचना की और उसे मनु को पढाया, तथा ब्रह्मा ने ही चारो वर्णों के धर्म भी निर्धारित कर दिये!
इस तरह, मनुस्मृति में मनु ने यह दावा किया है कि ब्राह्मणवाद (वर्ण-व्यवस्था) इस विश्व के तथाकथित रचनाकार ब्रह्मा द्वारा निर्मित है.

ब्राह्मणवाद का विरोध क्यों?

एक वाक्य में कहा जा सकता है कि ब्राह्मणवाद का विरोध इसलिए, क्योंकि यह व्यवस्था बुद्धि-विरोधी, अन्यायपूर्ण और अलोकतांत्रिक है. इसका स्वतंत्रता, समता और बंधुता के मानवीय और लोकतांत्रिक मूल्यों से विरोध है.

इस तरह, यह वैचारिक और नैतिक दोनों ही दृष्टि से अस्वीकार्य है. भारतीय सन्दर्भ में, ब्राह्मणवाद एक जातिविहीन, वर्गविहीन तथा औरत-मर्द बराबरी पर आधारित समाज की दिशा में बढ़ने के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है.
यह कहना कि वर्ण-व्यवस्था का निर्माण इस विश्व के तथाकथित रचनाकार ब्रह्मा द्वारा अपने शरीर के अलग-अलग अंगों से किया है, एक मनगढ़ंत और काल्पनिक बात है, जिसे कोई भी बुद्धिवादी व्यक्ति स्वीकार नहीं करेगा. वर्ण-व्यवस्था को सही ठहराने के प्रयत्न में, ब्राह्मणवाद द्वारा ईश्वर के अस्तित्व, वेदों की प्रामाणिकता, आत्मा की अमरता, कर्मवाद और अवतारवाद जैसे अंधविश्वासों का सहारा लिया गया है. इस तरह, आज के समय, ब्राह्मणवाद भारतीय समाज में अन्धविश्वासो और अंधविश्वासी मानसिकता का प्रमुख स्त्रोत है.
जैसाकि पहले भी कहा, ब्राह्मणवाद स्वतंत्रता, समता और बंधुता के मूल्यों के विरुद्ध है.
किसी जाति या लिंग विशेष में जन्म लेने के कारण किसी को "श्रेष्ठ" और किसी को "हीन" मान लेना, यहाँ तक कि कुछ लोगो को "अछूत" घोषित करना, और उनके लिये अलग-अलग कानून बनाना; समता और बंधुता के मूल्यों के विरुद्ध है.
औरतों और शूद्रों को शिक्षा के अधिकार से वंचित करना स्वतंत्रता और समता के मूल्यों की विरुद्ध है.

किसी एक जाति में जन्मे व्यक्ति को किसी एक व्यवसाय को अपनाने के लिए बाध्य करना, या किसी एक ही जाति में विवाह के लिये बाध्य करना; स्वतंत्रता के मूल्य के विरुद्ध है. इसी तरह औरत और मर्द के लिए दोहरे मापदंड स्थापित करना, और औरत को हमेशा मर्द के अधीन रहने का विधान देना, कभी भी स्वतंत्र रहने के लायक न मानना; स्वतंत्रता और समता के मूल्यों के विरुद्ध है.
हम कह सकते हैं की ब्राह्मणवाद (वर्ण-व्यवस्था) भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्वीकृत मूल्यों – स्वतंत्रता, समता, बंधुता और न्याय -- के विरुद्ध है, इसलिए यह संविधान-विरोधी भी है.

ब्राह्मणवाद का विरोध कैसे?

आज के सन्दर्भ में, सबसे प्रासंगिक प्रश्न यह है कि ब्राह्मणवाद का विरोध कैसे किया जाये? ब्राह्मणवाद के विरोध के अंतर्गत जाति-व्यवस्था और छुआछूत के विरोध को भी शामिल मानना चाहिए. ब्राह्मणवाद का विरोध हम **क्यों** कर रहे हैं, इससे ही यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि ब्राह्मणवाद का विरोध **कैसे** करना चाहिए.

1.सबसे पहले हमें जाति-व्यवस्था के सैद्धान्तिक आधार वर्ण-व्यवस्था या ब्राह्मणवाद के विरुद्ध एक वैचारिक अभियान चलाना चाहिए. इसके लिए हमे अंधविश्वासी मानसिकता और धर्मग्रंथों में आस्था पर प्रहार करना चाहिए, तथा तार्किक एवं वैज्ञानिक सोच और चिंतन को बढ़ावा देना चाहिए. ईश्वरवाद, धर्मग्रंथों की प्रामाणिकता, आत्मा की अमरता, कर्मवाद, मोक्षवाद सहित अवतारवाद का भी वैचारिक-दार्शनिक स्तर पर विरोध करना चाहिए, और इस अभियान को आम लोगों के बीच ले जाना चाहिए.

2. किसी जाति या लिंग विशेष में जन्म लेने के कारण किसी को “श्रेष्ठ” और किसी को “हीन” मानने की मनोवृत्ति को छोड़ कर; स्वतंत्रता, समता और बंधुता के मूल्यों को अपनाना चाहिए, और प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए, हर किसी को बराबरी के दर्जा देते हुए व्यवहार करना चाहिये.

3. पिछड़ी और दलित जातियों और आदिवासियों के बीच –- खास कर महिलाओं के बीच –- शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए.

4. जाति और व्यवसाय के बीच के सम्बन्ध को तोड़ने का प्रयास करना चाहिए. हर किसी को उसकी रूचि और क्षमता के आधार पर व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए. इस आदर्श की तरफ बढ़ने के लिए, हजारों वर्षों तक शिक्षा और “सम्मानित” समझे जाने वाले व्यवसायों से जाति और लिंग के आधार पर वंचित रखे गए लोंगों को, जाति और लिंग के आधार पर आरक्षण मिलना चाहिए, ताकि परम्परागत रूप से वंचित वर्गों को विशेष अवसर मिल सके. जाति आधारित आरक्षण, जाति और व्यवसाय के बीच के परम्परागत सम्बन्ध को तोड़ने का एक सशक्त औजार है. इस नीति को कारगर रूप से लागू करने, और जाति और गरीबी के बीच के सम्बन्धों को समझने के लिये जाति-गणना भी जरूरी है.

5. जाति और धर्म के बंधन के बिना अपनी मर्जी से विवाह का समर्थन करना चाहिए.

6. औरत-मर्द बराबरी को एक सामाजिक आदर्श मान कर निरंतर इस दिशा में बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए.

7. जाति-व्यवस्था को मिटाने का एक महत्त्वपूर्ण अर्थ है जाति पर आधारित गैरबराबरी को मिटाना. पिछड़ी और दलित जातियों और आदिवासियों की सामाजिक स्थिति में सुधार के लिये उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार भी जरूरी है. इसके लिए हमे ऐसी आर्थिक नीतियों के लिए प्रयत्न करना चाहिए, जो गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई और बढ़ती आर्थिक गैरबराबरी को मिटाए; और सभी को अच्छी चिकित्सा और शिक्षा सुलभ कराए.

8. ब्राह्मणवादी संस्कृति के विकल्प के रूप में मानवतावादी संस्कृति के विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिए.
इस तरह की एक समग्र नीति द्वारा हम ब्राह्मणवाद और जाति-व्यवस्था के हर पक्ष का विरोध कर सकते हैं, और इसे मिटा सकते हैं. यह अपने आप में एक सामाजिक क्रांति होगी!

आज के हालात और हमारी भूमिका

डॉ. रमेन्द्र

आज हमारा देश एक संकट के दौर से गुजर रहा है। समस्याएं तो अनेक हैं – महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी, बढ़ती गैरबराबरी, भ्रष्टाचार, अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा का अभाव। रुपये की कीमत रोज-रोज नीचे गिरती जा रही है, सो अलग। लेकिन, जो सबसे बड़ी समस्या आज हमारे सामने खड़ी है, वह है साम्प्रदायिकता की : भाजपा की संघीय सरकार और राज्य सरकारों के संरक्षण में भारतीय मुसलमानों के विरुद्ध नफ़रत और हिंसा का अभियान, जिसकी चरम परिणिति "बुल्डोज़र न्याय" में हुई है। यह बीमारी भाजपा शासित उत्तर प्रदेश से शुरू हो कर मध्य प्रदेश और गुजरात से होते हुए अब देश की राजधानी दिल्ली तक पहुँच चुकी है। कोरोना से भी बहुत ज्यादा खतरनाक यह कम्युनल वायरस हमारे धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र के लिए आज सबसे बड़ा खतरा है।

लगता है भाजपा-आर०एस०एस द्वारा इस तरह नफ़रत फ़ैलाने के दो मकसद हैं : एक, संकीर्ण और फ़ासिस्ट "हिन्दू राष्ट्र" की अवधारणा को जमीन पर उतारना, बुल्डोज़र जिसका प्रतीक है। दूसरे, यह महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी और बढ़ती गैरबराबरी जैसे बुनियादी मुद्दों से लोगों का ध्यान हटाने की भाजपा की चुनाव-रणनीति का हिस्सा है।

भाजपा को मालूम है कि इन बुनियादी मुद्दों पर वह पूरी तरह असफल रही है। इनके बारे में उसके पास बोलने के लिए कुछ भी नहीं है। इसलिए, संघीय सरकार के संरक्षण में साम्प्रदायिकता के "गुजरात मॉडल" को जहाँ-जहाँ भी चुनाव होने हैं, वहां-वहां लागू करने की कोशिश की जा रही है।

सवाल यह है कि ऐसे में हमारे जैसे गैरपार्टी संगठनों की क्या भूमिका हो, जो धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र का समर्थन करते है, और उसके लिए पूरी तौर से प्रतिबद्ध हैं?

सबसे पहला राजनीतिक उपाय तो यही है कि जहाँ-जहाँ भी चुनाव हों, वहां-वहां चुनाव में भाजपा को हराया जाए, या राजनीतिक दृष्टि से कमजोर किया जाए; और यह काम राजनीतिक दल ही कर सकते हैं, और करेंगे।

एक गैरपार्टी संगठन के रूप में हम भाजपा-विरोधी राजनीतिक दलों से अपील कर सकते हैं कि, जहाँ तक सम्भव हो, वे भाजपा के विरुद्ध एक संयुक्त उम्मीदवार खड़ा करें। जहाँ राजनीतिक दल ऐसा ना कर पायें, वहां हम वोटरों से यह अपील करें कि वे अपने स्तर पर भाजपा-विरोधी सबसे सशक्त उम्मीदवार को चुन कर, एकजुट हो कर उसे वोट दें। भाजपा को भाजपा-विरोधी मतों के विभाजन का लाभ मिलता रहा है। अगर इस विभाजन को रोका जाए तो भाजपा को हराना मुश्किल नहीं है; क्योंकि मतदाताओं के बहुमत ने (60 प्रतिशत या उससे अधिक) लगभग हमेशा भाजपा के विरुद्ध वोट दिया है।

यह तो हुई चुनाव रणनीति की बात। लेकिन इसके अलावा, यह बहुत जरूरी है कि हम संगठित हो कर अपनी ताकत को बढ़ाएं, तथा भाजपा-आर. एस. एस. की साम्प्रदायिक नीतिओं, और बुनियादी मुद्दों से ध्यान हटाने के प्रयत्नों के विरुद्ध अपनी आवाज़ मजबूती से उठाएँ। साथ ही, हर स्तर पर (दार्शनिक-वैचारिक-नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक) हर सम्भव संवैधानिक तरीकों का इस्तेमाल करते हुए, भाजपा-आरएसएस के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोध आन्दोलन खड़ा करें, और खास तौर से आरएसएस विरुद्ध एक कारगर वैचारिक-सामाजिक अभियान चलायें। इसके लिए सोशल मीडिया सहित वैकल्पिक मीडिया की सहायता लें।

(23/24 **अप्रील, 2022, को लखनऊ में आयोजित जनतंत्र समाज** [Citizens for Democracy (CFD)] **के राष्ट्रीय सम्मलेन ले लिए तैयार किये गए नोट पर आधारित.**)

शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो।

डॉ. आंबेडकर

जनतंत्र समाज (Citizens for Democracy - CFD), बिहार, की पटना बैठक

जनतंत्र समाज (Citizens for Democracy-CFD), बिहार, की बैठक दिनांक 17 जुलाई, 2022, को बुद्धिवादी सेमिनार-हॉल (216-A, श्री कृष्णपुरी, पटना) में संध्या तीन बजे से आयोजित की गयी. बैठक में प्रभात कुमार, प्रभाकर कुमार, डॉ किरण नाथ, डॉ कवलजीत कौर, प्रिया नाथ, ललित कुमार, प्रशांत कुमार, प्रियदर्शी सौरभ, अशोक कुमार आज़ाद, बमबम कुमार सिंह और डॉ सुभाष चन्द्र सिंह शामिल हुए. बैठक की अध्यक्षता प्रोफेसर (डॉ) रमेन्द्र ने की. कुछ साथियों ने शामिल ना हो पाने पर समर्थन के सन्देश भेजे.

बैठक में महत्त्वपूर्ण संगठनात्मक और समसामयिक मुद्दों पर चर्चा हुई. डॉ रमेन्द्र ने दो वर्षों का कार्यकाल पूरा होने पर इस्तीफे की पेशकश की थी, जिसे अस्वीकार करते हुए, उन्हें अगले निर्वाचन तक जनतंत्र समाज, बिहार, का अध्यक्ष बने रहने को कहा गया, जिसे उन्होंने स्वीकार किया.

संगठन को मजबूत बनाने के लिए लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता के लिय पूरी तरह प्रतिबद्ध, गैरपार्टी लोगो को सदस्य बनाने तथा, जिलों, विश्वविद्यालयों में, जहाँ संभव हो, इकाई बनाने की कोशिश करने का निर्णय लिया गया.

पटना हाई कोर्ट में 'एडवोकेट्स फॉर डेमोक्रेसी' बनाने की जिम्मेवारी प्रभाकर कुमार ने ली; जबकि वैशाली जिले में इकाई बनाने की जिम्मेवारी अशोक कुमार आज़ाद ने.
बैठक में समसामयिक मुद्दों पर महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी पारित किये गए:

1. केंद्र और राज्य सरकार ग़रीबी, बेरोजगारी, महंगाई, गैरबराबरी, भ्रष्टाचार तथा चिकित्सा एवं शिक्षा जैसे बुनियादी मुद्दों पर ध्यान दे.

2. धर्म के आधार पर नफरत, हिंसा-प्रतिहिंसा पर तत्काल रोक लगाई जाए, तथा इसे रोकने की सबसे बड़ी जिम्मेवारी प्रधानमंत्री, नरेन्द्र मोदी, की है.

3. हम केंद्र सरकार के तानाशाही रवैये की निंदा-भर्त्सना करते हैं, और यह मांग करते हैं कि उन सभी नागरिकों को जेल से रिहा किया जाए, जिन्हें सिर्फ शांतिमय तरीकों से अपने विचार व्यक्त करने के कारण जेल में डाला गया है.

4. अन्धाधुन्द निजीकरण पर तत्काल रोक लगायी जाए, और सरकार बैकों के निजीकरण से बाज आये.

5. सरकारी सेवाओं में 'लेटरल एंट्री' और संविदा पर आधारित बहाली पर रोक लगाई जाए.

6. इतिहास सहित शिक्षा के पाठ्यक्रम के साथ मनमाने छेड़-छाड़ पर रोक लगाई जाए.

7. केंद्र सरकार द्वारा सीबीआई, इडी और इनकम टैक्स विभाग के राजनीतिक विरोधियों के विरुद्ध चयनात्मक दुरूपयोग पर रोक लगाई जाए.

Philosophy of Love

Dr. Ramendra

WhatsApp or email for free electronic (PDF) version

Coming soon in print version

Published by Buddhiwadi Foundation

स्त्री-विमर्श

डॉ. कवलजीत

हम बुद्धिवादी का यह अंक एक अंतराल के बाद प्रकाशित कर रहे हैं। हमें खेद है कि कोविड-19 और कुछ अन्य अपरिहार्य कारणों से यह विलम्ब हुआ।

इस बीच हम सबों का कुछ अच्छे और कुछ दुखभरे घटनाक्रमों से सामना हुआ।

नारीवाद के दो स्तंभों – कमला भसीन और कनक - को हमने खो दिया। नारीवादी आंदोलन की यह बहुत बड़ी क्षति है।

डॉ. किरन का 'कनक स्मृति शेष' इस अंक में सम्मलित है; एवं कनक के लेखों के संकलन **स्त्रीशब्द** पुस्तक परिचय कॉलम में शामिल किया गया है। हम बुद्धिवादी का अगला अंक कमला भसीन को समर्पित करेंगे।

जैसा कि स्पष्ट है **बुद्धिवादी** का आधा अंक नारीवादी परिपेक्ष्य को प्रस्तुत करता है। हमारी समझ से भारतीय संदर्भ में सामाजिक दमन के दो बुनियादी मुद्दे हैं - जेन्डर और जाति। इतिहासकार, उमा चक्रवर्ती, के 'ब्राह्मणवादी पितृसत्ता' शब्दावली का विश्लेषण जेन्डर और जाति के परस्पर जुड़ाव का ही परिणाम है।

इस अंक से हम प्रमुख नारीवादी रचनाओं से पाठकों को रू-ब-रू कराने के लिए आंशिक प्रकाशन शुरू कर रहे हैं। इस अंक में हम महाराष्ट्र की नारीवादी, ताराबाई शिंदे, की 1882 की विवादित मराठी रचना **स्त्री-पुरुष तुलना** के एक अंश का प्रकाशन कर रहे हैं। वैसे, इसे पहली आधुनिक भारतीय नारीवादी कृति भी माना जाता है। ताराबाई शिंदे ने **स्त्री-पुरुष तुलना** में पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों और पुरुषों के लिए नैतिकता के दोहरे मानदंड की कड़ी आलोचना की है। ताराबाई शिंदे के समकालीन, जोतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले, ने इस रचना को अपने सत्य शोधक मण्डल की पत्रिका 'सतसार' में प्रकाशित किया था।

इसके अलावा, दो समकालीन मुद्दों पर चर्चा करना चाहती हूँ : पहला, सुप्रीम कोर्ट के गर्भपात कानून (मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेंसी एक्ट, 1971) से सम्बंधित ऐतिहासिक फैसले से। हम इस फैसले का समर्थन करते हैं।

29 सितम्बर, 2022, को जस्टिस चंद्रचूड़ की अध्यक्षता मे पीठासीन बेंच ने विवाहित-अविवाहित-एकल सभी वर्गों की महिलाओं को इस गर्भपात कानून के दायरे मे लाने का फैसला सुनाया।

एकल और अविवाहित महिलाओं को विवाहित महिलाओं की तरह, आर्टिकल 14 (समानता का अधिकार) के तहत, चिकित्सकीय रूप से सुरक्षित गर्भपात का अधिकार मिला है।

इसके साथ, विवाहित महिलाओं के लिए गर्भपात की अवधि 24 सप्ताह और अविवाहित के लिए 20 सप्ताह थी। अब, सभी वर्गों के लिए 24 सप्ताह की गर्भपात कराने की अवधि निर्धारित की गई है।

महिलाओं को प्रजनन स्वायत्तता का अधिकार विवाहित महिलाओं के साथ अविवाहित और एकल महिलाओं को भी मिला।

उल्लेखनीय है कि सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप अपने फैसले में जाहिर किया कि **स्त्री के शरीर पर सिर्फ उसका ही अधिकार है**। यदि वह गर्भ धारण करना नहीं चाहती है तो उस पर किसी प्रकार का दवाब नहीं बनाया जा सकता है।

इसके अलावा, सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में वैवाहिक बलात्कार (marital rape) को भी मान्यता दी है। वैसे, वैवाहिक बलात्कार का अपराधीकरण करने से रोक दिया क्योंकि यह मुद्दा एक अन्य मामले में लम्बित है। सुप्रीम कोर्ट ने वैवाहिक बलात्कार को बलात्कार की ही तरह मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेंसी ऐक्ट और नियमों के तहत शामिल किया है।

साथ ही, इस फैसले ने एक नाबालिग लड़की का गर्भपात करने वाले डॉक्टर पुलिस को, नाबालिग की पहचान और मामले में किसी भी आपराधिक कार्यवाही में खुलासा करने से, छूट दी है। अर्थात, नाबालिगों को पुलिस को पहचान बताए बिना सहमति से गर्भपात की अनुमति मिली है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि भारत में महिलाओं का गर्भपात का फैसला कानूनी तौर पर निजी घोषित किया गया है।

अफसोस की बात है कि अमरीकी सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक अहम फैसले में, अपने पाँच दशक पुराने फैसले को पलट दिया है; और यह कहा है कि अमेरिका में महिलाओं को गर्भपात की कोई संवैधानिक गारंटी नहीं है!

अब महिलाओं के लिए गर्भपात का हक कानूनी रहेगा या नहीं – इस पर अमरीका के अलग-अलग राज्य अपने-अपने अलग नियम बना सकते हैं। माना जा रहा है कि आधे से अधिक अमरीकी राज्य गर्भपात पर नए प्रतिबंध लागू कर सकते हैं।

दूसरा समकालीन गंभीर मुद्दा है : ईरान की महिलाओं का विद्रोह

हम ईरान की महिलाओं के स्वतंत्रता के अधिकार के संघर्ष का समर्थन और उनके आंदोलन को कुचलने की निंदा करते हैं। इस विद्रोह की शुरुआत 22 वर्षों की कुर्द युवती, मासा अमीनी, की हत्या के कारण हुई। उसे तय कायदे के अनुसार, हिजाब न पहनने के कारण, पुलिस ने पकड़ कर इतनी पिटाई की, जिससे उसकी मृत्यु ही हो गई।

अमीनी की मृत्यु की खबर सुनते ही, बड़ी संख्या में महिलाएं सड़कों पर विरोध करने निकलीं। उन्होंने इस सांस्कृतिक दमन का विरोध सार्वजनिक रूप से अपने हिजाब उतारने, उसे जलाने, साथ ही खुले आम, अपने बाल काटने से किया। यहाँ तक कि इन सबों की तस्वीरों को भी सार्वजनिक कर प्रसारित किया। उन्हें घोर दमन का सामना करना पड़ रहा है।

उनके इस अपने अधिकारों के संघर्ष में ईरान के कई शहरों में महिलाओं ने इस विद्रोह में शामिल हो कर अपने हिजाब जलाने, अपने बाल कांटने का कार्यक्रम किया। अनेक पुरुष भी उनके विद्रोह का साथ दे रहे हैं। कई महिलाओं की मृत्यु के दुखद समाचार भी मिल रहे हैं।

यह विद्रोह दमनकारी धार्मिक सत्ता द्वारा महिलाओं के नियंत्रण के विरुद्ध है। यह व्यक्ति और देश के बीच खुद की आजादी का संघर्ष है।

भारत और विश्व के कुछ देशों में ईरान की महिलाओं अधिकारों के लिए महिला एवं छात्र-संगठन समर्थन में सार्वजनिक विरोध-प्रदर्शन कर रहे हैं।

हाल में भारत के कर्नाटक राज्य में भी हिजाब पर विवाद हुआ है। मामला कोर्ट में भी गया। यह मामला स्कूल-कॉलेज में यूनिफॉर्म के दायरे में हिजाब न पहनने से जुड़ा है। लड़कियों के स्कूल-कॉलेज में सिर्फ अपनी क्लास रूम में हिजाब ना पहनने का कोर्ट का फैसला आया है। यहाँ इसे स्वतंत्र चुनाव की आजादी का मामला नहीं माना जाना चाहिए।

दार्शनिकों में महिला दार्शनिकों का लगभग नगण्य प्रतिनिधित्व

डॉ. कवलजीत

अकादमिक अध्ययन-अध्यापन और शोध के क्षेत्र में महिला दार्शनिकों का लगभग नगण्य प्रतिनिधित्व एक दुखद और चिंताजनक वास्तविकता है। पाठ्यक्रमों में महिला दार्शनिकों की संख्या को कम शामिल करने का दुष्परिणाम है कि विद्यार्थियों को उनके बारे में जानकारी नहीं के बराबर है।

हमलोग बी. ए., एम. ए., पी. एच. डी. करने के बाद भी महिला दार्शनिकों के विषय में लगभग अनभिज्ञ ही रहते हैं। यह हमारे शैक्षणिक पाठ्यक्रमों से स्त्रियों के अनुभव और योगदान प्राय: गायब रहने का नतीजा है।

इधर हाल में मुझे Rebecca Buxton और Lisa Whitley की पुस्तक The Philosopher Queens की जानकारी मिली।

इस पुस्तक का जिक्र विस्तार से बाद में करूंगी, अभी दोनों सह-लेखिकाओं के अनुभव को बताना चाहूँगी। दोनों, Rebecca और Lisa, ने किंग्स कॉलेज ऑफ लंदन से दर्शन शास्त्र में स्नातक की पढ़ाई की। दोनों ग्रेजुएशन के दौरान लंदन के बुक स्टोरस में महिला दार्शनिकों के विषय पर किताबें खोजने गईं। उन्हें एक भी संतोषजनक किताब नहीं मिली।

उन्हें *Philosophy*: 100 *Essential Thinkers* किताब देखने को मिली, इसमें सिर्फ़ दो महिला-दार्शनिकों – मेरी वॉल्स्टोनक्राफ्ट (Mary Wollstonecraft) और सिमोन द बोउआर (Simone de Beauvoir) को ही शामिल किया गया था। इसके अलावा, उन्होंने *The Great Philosophers*: *From Socrates to Turing* पुस्तक देखी। इसमें एक भी महिला दार्शनिक का उल्लेख नहीं था। उसमें सभी एंट्रीस समकालीन दार्शनिकों द्वारा की गई है और वे सभी दार्शनिक पुरुष हैं! तीसरी पुस्तक जो दोनों, रेबेका और लिसा ने देखी , वह थी, *The History of Philosophy* – A. C. Grayling। इसमें कोई भी सेक्शन महिला दार्शनिक के लिए उपलब्ध नहीं है। वैसे, साढ़े तीन पेज का नारीवादी दर्शन का रिव्यू शामिल है। इसमें एक मात्र महिला

दार्शनिक को सम्मिलित किया गया है: अमरीकी दार्शनिक और कानूनी विद्वान, मारथा नुसबम। इन्होंने हार्वर्ड विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की डिग्री हासिल की, जहां उन्हें कटु अनुभव हुए। उन्हें भेदभाव और यौन उत्पीड़न का सामना भी करना पड़ा।

Rebecca Buxton और Lisa Whitley की "The Philosopher Queens" पुस्तक 2020 में प्रकाशित हुई। उन्होंने पुस्तक में 20 महिला दार्शनिकों को शामिल किया। इस पुस्तक का विस्तार व्यापक है। इसमें यूरोप के साथ अफ्रीकी-अमरीकी, नाइजीरिया, बांग्लादेश के दार्शनिकों के आलेख शामिल हैं।

अपनी इस प्रस्तुति में कि अकादमिक अध्ययन-अध्यापन और शोध के क्षेत्र में महिला दार्शनिकों का प्रतिनिधित्व लगभग नगण्य है, Rebecca Buxton और Lisa Whitley की पुस्तक The Philosopher Queens के साथ Mary Warnock की पुस्तक Women Philosophers का उल्लेख जरूरी है।

Mary Warnock ने 17 महिला दार्शनिकों के आलेखों का संकलन किया, जो Women Philosophers के नाम से 1996 में ही प्रकाशित हुई। इसे न तो प्रचारित किया गया और न ही यह फिलहाल उपलब्ध है। Mary Warnock की पुस्तकें Ethics Since 1900 और Popper काफी लोकप्रिय हैं, परंतु चिंताजनक स्थिति है कि Women Philosophers की जानकारी बहुत कम है।

अभी तक के उदाहरणों के माध्यम से मैंने महिला दार्शनिकों की वस्तुस्थिति को सामने लाने की कोशिश की है।

प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसी स्थिति क्यों है? महिला दार्शनिकों को अहमियत नहीं मिलने के क्या कारण हैं?

यह वास्तविकता है कि महिलाओं को लम्बे समय तक शिक्षा से वंचित रखा गया।

हमारे भारत और पश्चिम में भी स्त्रियों कि शिक्षा का औचित्य, उसके माँ और घर सम्भालने के सामर्थ्य को बढ़ाने, तक ही सीमित रहा।

धर्मों की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, जब नारी और शूद्रों को **वेद** पढ़ने की पाबंदी लगी, तो परिणाम हुआ कि उनके साक्षरता पर ही रोक लग गई।

भारत में लड़कियों की शिक्षा के पथप्रदर्शक, जोतिराव फुले और सावित्री फुले, को माना गया है। उन्होंने पुणे में, 1848 में, पहला लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोला।

पश्चिम में भी महिलाओं की शिक्षा के मामले में स्थिति अच्छी नहीं रही।

प्रख्यात ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की स्थापना 1096 में हुई और 1920 से महिलाओं को प्रवेश मिला। समान शिक्षा के लिए कदम उठाने में, लगभग 800 वर्षों का अंतराल, गवां दिया गया!

इसी तरह, कैंब्रिज विश्वविद्यालय की स्थापना 1209 में महिला हुई और स्त्रियों का एड्मिशन शुरू हुआ 1948 में!

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में भी 1920 में महिलाओं को एड्मिशन की इजाजत मिली, जबकि स्थापना 1636 में ही हुई!

इस संस्थागत बहिष्करण का मकसद महिलाओं के लिए समाज में ऐसी भूमिका निर्धारित करना रहा, जिससे उनकी सोच और स्वतंत्रता को न्यूनतम रखा जा सके!

क्या अपने लिए यह भूमिका महिलाओं ने खुद तय की?

बिल्कुल, ऐसा नहीं हो सकता है। अपनी आजादी, अपनी गरिमा, अपने स्वाभिमान को क्यों कोई महिला पाबंदी लगाने या लगवाने के लिए सहर्ष तैयार होगी।

समाज की पितृसत्तात्मक सोच से हम महिला दार्शनिकों की नगण्य प्रतिनिधित्व को समझ सकते हैं। वैसे, मेरा इरादा यहाँ पितृसत्तात्मक सोच की विस्तृत व्याख्या करना नहीं है।

राहत और आशा की बात है कि तमाम बाधाओं के बावजूद महिला दार्शनिकों की कई लम्बी सूचियां इंटरनेट पर उपलब्ध हैं।

महिला दार्शनिकों का कम प्रतिनिधित्व चिंताजनक तो है ही, साथ ही, कुछ महान अग्रणी और प्रभावी भूमिका में रहे, पुरुष दार्शनिकों, के स्त्रियों के विषय में विचार घोर आपत्तिजनक और निंदनीय हैं। उनके महिला-सम्बंधी आपत्तिजनक विचारों को दर-किनार करना सही नहीं है। इन विचारों को चर्चा-शोध के दायरे में लाना आवश्यक है।

मेरा मानना है कि अरिस्टॉटल, रूसो, हेगेल, कान्ट, जैसे दार्शनिकों और चिंतकों के महिला-सम्बंधी विचारों पर चर्चा होनी चाहिए। साथ ही, किसी भी चिंतक को पढ़ते समय,

उन्हें समग्रता से समझने के लिए उनके महिला-सम्बंधी विचारों को जानना जरूरी है। इससे हमें उनके सबसे बुनियादी मूल्य "लोकतान्त्रिक होने" का प्रमाण मिल सकेगा।

हमें चिंतकों, दार्शनिकों के महिला-सम्बंधी आपत्तिजनक विचारों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। उस वक्त की सामाजिक सोच की दुहाई देना काफी नहीं है। पहली बात तो यह है कि जब उनके चिंतन को अपने समय से आगे माना जाता है; तब, ऐसे में महिलाओं के प्रति समाज में व्याप्त पूर्वाग्रह और भेदभाव से खुद को ऊपर उठाना उनके लिए मुश्किल काम तो नहीं था!

हालांकि, 1700 में ही Mary Astell (1666-1731) की किताब Some Reflections Upon Marriage का प्रकाशन हो चुका था। साथ ही,

1792 में Mary Wollstonecraft की प्रसिद्ध पुस्तक A Vindication of Rights of Women प्रकाशन हो गया था।

इन और कई महिला दार्शनिकों की रचनाओं के उपलब्धि के बावजूद अकादमी अध्ययन-अध्यापन से अदृश निश्चय ही रोष का विषय है।

वैसे, सिर्फ, कुछ 'महान' पुरुष दार्शनिक ही नारी-विरोधी नहीं हुए हैं। कुछ महिला दार्शनिकों को भी नारी-विरोधी की श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है।

फ्रेंच महिला, Maximiani Julia Portas, ने दर्शनशास्त्र में पी. एच. की डिग्री हासिल की। उन्होंने अपना नाम बदल कर सावित्री देवी रखा। नात्सिवाद अपना कर; एडॉल्फ हिटलर को हिन्दू देवता का अवतार घोषित किया!!

दूसरी ओर, जोतिराव फुले, पेरियार, डॉ. अम्बेडकर, फ्रेडरिक एंगेलस, अमर्त्य सेन, जॉन स्टुअर्ट मिल, इत्यादि, अनेक पुरुष दार्शनिक नारीवादी हैं।

फ्रेंच समाजशास्त्री, Charles Fourier, ने महिला अधिकार के संदर्भ में 'feminism' शब्द को गढ़ा (coin) है।

एक और बिंदू पर विचार कर लेते हैं। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि दर्शन तो दर्शन होता है –इसे जेन्डर से क्या लेना?

हम भी तो यही कह रहे हैं कि **महिला दार्शनिकों के अच्छे दर्शन को** आपलोग न तो नजरअंदाज करें और न ही इसे नकारें। इसे भी **अकादमिक पाठ्यक्रम में शामिल करें**।

साथ ही, यदि जेन्डर के आधार को प्रमुखता न दी गई होती, तो अधिकांश दर्शन, पुरुषों का, पुरुषों के लिए और पुरुषों द्वारा किया गया, क्यों प्रतीत होता?

वैसे, मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि कई बार अपने नारीवादी सवालों का सामना चुप्पी से होता है। सवाल करना, चर्चा करना तो अध्ययन की बुनियादी आवश्यकता है।

अब, पटना विश्वविद्यालय के एम. ए. के पाठ्यक्रम की संक्षिप्त चर्चा कर लेते हैं। पाठ्यक्रम में मानवाधिकार और नारीवाद एक पेपर है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि किसी भी चिंतक के नारीवादी विचारों पर अध्ययन, अध्यापन और शोध तो होना ही चाहिए।

वैसे, मेरा यह प्रस्ताव है कि महिला दार्शनिकों के विभिन्न दार्शनिक शाखाओं से जुड़े उनके विचार और योगदान को, अन्य पुरुष दार्शनिकों के समकक्ष, पढ़ाना और शोध कराना चाहिए।

महिला दार्शनिकों के दर्शन के नजरिए पर चर्चा और शोध आवश्यक है। दार्शनिक, जूडिथ एन. शकलर, हावर्ड यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर, ने अपनी पुस्तक American Citizenship मे अपने क्रियाविधि (methodology) के जरिए अन्याय, क्रूरता जैसे प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित कर समाज के नकारात्मक और अन्यायपूर्ण पक्ष पर बल दिया तथा उन्हें दूर करने की वकालत की। दूसरी ओर, जूडिथ के समकक्ष, अमरीकी दार्शनिक, जॉन रॉल्स, जिनकी ख्याति अधिक हुई, ने न्याय और निष्पक्षता की बात की। अमर्त्य सेन और जूडिथ शकलर के विचार मिलते-जुलते हैं।

यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि **सभी लोकतान्त्रिक मानवतावादी नारीवादी होते हैं**।

उल्लेखनीय मुद्दा यह भी सामने आया कि कई महिला दार्शनिकों ने अपने अनुभवों का दार्शनिक विश्लेषण कर सामाजिक वास्तविकता से हमें रू-ब-रू कराया है। यहाँ हम एंजेला डेविस का जिक्र कर सकते है। उन्होंने अपनी पुस्तक Women, Race and Class में विस्तृत विश्लेषण कर इन दार्शनिक अवधारणाओं को बखूबी स्पष्ट किया है।

इतिहासकार, Gerda Lerner, की उक्ति से मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ :

"अब तक का ज्ञान एक आँख से देखे गए का परिणाम था। दोनों आँखों से देखने पर हमारे दृश्य का फलक विस्तृत होगा।"

भारत में महिला स्वातंत्र्य आंदोलन की दशा और दिशा

डॉ. किरन नाथ

महिला स्वातंत्र्य आंदोलन (Women Liberation Movement) की शुरुआत पश्चिम देशों में हुई थी। 1975 में यू. एन. ओ. ने महिला दशक और 8 मार्च को महिला दिवस की घोषणा की। इसके बाद ही यह आंदोलन विश्व स्तर पर फैला।

भारत में 1974 में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में सम्पूर्ण क्रांति या व्यवस्था परिवर्तन का आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिसमें छात्र-छात्राएं और युवाओं की बड़ी संख्या में भागीदारी हुई। जहां भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी जैसे मुद्दों को लेकर इस आंदोलन की शुरुआत हुई, वहीं सम्पूर्ण क्रांति का नारा देकर जे. पी. ने इसे समाज के हर स्तर पर चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक या वैचारिक हो, आमूल परिवर्तन के लिए आह्वान किया।

1975 के महिला आंदोलन के प्रभाव में शामिल छात्राओं एवं महिलाओं ने महिलाओं के मुद्दों को भी जोड़ना आरंभ किया। यह नारा था:

'औरत के सहभाग बिना हर बदलाव अधूरा है!'

महिलाओं की समस्या को लेकर शिविर-गोष्ठियाँ आयोजित की जानी लगीं। कई महिला संगठन अस्तित्व में आए, महिला विमर्श पर साहित्य, लेखन और बुलेटिन महिला लेखिकाओं और नारीवादी संगठन के कार्यकर्ताओं के छपने लगे।

यह नहीं कहा जा सकता है कि पूर्व मे चले गांधी के आंदोलन या आंबेडकर के आंदोलन मे महिलाओं के मुद्दों को नहीं उठाया गया था। बल्कि, सती-प्रथा, बहुविवाह के विरुद्ध कानून भी बनें। डॉ. आंबेडकर महिलाओं के हित में हिन्दू कोड बिल लाए। साथ ही, संविधान में महिलाओं को समानता का अधिकार दिया। यह सब पाने के लिए पश्चिम मे महिलाओं को लम्बा संघर्ष करना पड़ा। भारत मे संविधान में सहज ही मिल गया जैसे, वोट देने का अधिकार। लेकिन, महिलों को समानता और अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता 1975 के महिला आंदोलन के बाद ही आयी। साथ ही, जेन्डर समानता, महिला सशक्तिकरण, महिला विमर्श, महिला अध्ययन की शुरुआत हुई।

अब, पचास वर्ष लगभग होने जा रहे हैं। यह देखना होगा कि हम महिला स्वातंत्र्य में कहाँ तक पहुंचे। भारत में महिलाएं जाति, वर्ण और धर्म मे बँटी हुई हैं। यहाँ केवल जेंडर-भेद की समस्या नहीं थी। शुरुआती दौर में इस आंदोलन की बागडोर उच्च और शिक्षित महिलाओं के हाथ में रही, और कामगार महिलाओं की समस्या और परिस्थिति को अनदेखा ही कर दिया गया।

शहरी और स्वर्ण महिला के साथ हुए बलात्कार के विरुद्ध एक आंदोलन उठ खड़ा हुआ। लेकिन, दलित- आदिवासी महिलाओं के साथ होने वाली बलात्कार -हत्या पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। यहाँ तक कि कठुआ में हुए एक मुस्लिम बच्ची के साथ बलात्कार और हत्या में महिला आयोग और शासक वर्ग की कुछ महिलाएं तो बलात्कारियों का बचाव ही करती नजर आयीं। घरेलू हिंसा को लेकर भी श्रमिक और कामगार महिलाओं को कोई राहत नहीं देखने को मिलता है। नारी स्वातंत्र्य के लिए महिलाओं को आर्थिक तौर पर स्वावलम्बी बनने की शिफ़ारिश की गई। जबकि, श्रमिक और घरों में या अन्य जगह मज़दूरी करने वाली महिलाएँ, खुद कमाने के बावजूद, रोज पिटती हैं, और उनकी कमाई भी छीन ली जाती है।

दलित-आदिवासी और गरीब तबके की बालिकाओं की खरीद-फरोख्त धड़ल्ले से की जाती है। कानून बनने के बाद और महिला संगठन एवं महिला आयोग, जिन पर अधिकतर उच्च वर्ग की महिलाओं का प्रभाव है, इन समस्याओं का कितना निदान कर पाईं हैं?

इसलिए भारत के संदर्भ में इस सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखकर रणनीति बनाने की जरूरत है। जिन परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों रूढ़ियों, कुप्रथाओं पर हमारा समाज चलता है, उनपर कुठाराघात होना चाहिए।

महिलाओं की दुर्दशा में सुधार तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि परिवार के स्तर से ही इन भेद भावों को मिटाया नहीं जाएगा। जेंडर भेद और ग़ैरबराबरी के साथ हमें जाति-भेद, वर्गभेद, महिलाओं और बच्चों के विरूद्ध हिंसा और धार्मिक कट्टरवाद को मिटाने का अभियान चलाना ही होगा।

सवालों के घेरे में

महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के मुकाबले पीछे हैं!

चार्ल्स डार्विन
प्रकृतिवादी वैज्ञानिक
डिसेन्ट ऑफ मैन (1871)

डॉ कवलजीत

चार्ल्स डार्विन के महिलाओं से सम्बंधित विचार पर चर्चा करने से पहले, हम संक्षेप में, उनके विकासवाद या प्राकृतिक चयन (नैचुरल चॉइस) के सिद्धांत को समझ लेते हैं।

डार्विन का विकासवादी सिद्धांत

1809 में जन्मे, इंग्लैंड के प्रकृतिवादी, चार्ल्स डार्विन, के प्रकृतिवादी चयन (natural choice) द्वारा विकास का वैज्ञानिक सिद्धांत आधुनिक विकासवादी अध्ययन का नींव माना जाता है।

दरअसल, उस वक्त का सामान्य ज्ञान था कि धरती पर मौजूद सभी जीव-जन्तु को ईश्वर / विधाता ने बनाएं हैं; और, साथ में, ये जीव-जन्तु हमेशा से, अपने अभी दिखने वाले रूप में ही रहे हैं।

इस तात्कालिक विश्वास को डार्विन ने 1859 में अपनी पुस्तक **ऑन द ऑरिजिन ऑफ स्पीशीज़** (On The Origin of Species) के माध्यम से साहसिक चुनौती दी।

डार्विन का मत था कि प्रकृति क्रमिक परिवर्तन द्वारा अपना विकास करती है। सभी प्रजातियाँ मूल रूप से एक ही जाति की उत्पति हैं। परिस्थितियों के अनुरूप अपने-आप को ढालने की विवशता प्रजाति-विविधता को जन्म देती है।

डार्विन की खोज के अनुसार, पत्थरों के जीवाश्म उस जगह के वर्तमान जानवर जैसे दिखते थे, चाहे उनका आकार अलग हो, पर शरीर का ढांचा समान होता है। उनका अवलोकन रहा कि किसी भी जगह में, आज के रहने वाले जीवों का, उस जगह पर लाखों साल पहले जीवों से कोई रिश्ता है।

डार्विन ने प्राकृतिक संघर्ष के तीन स्तम्भ बताए हैं :

1. विविधता
2. प्रतियोगिता – जनसंख्या में अपने क्षेत्र में रहने की प्रतियोगिता
3. चुनाव – सबसे अधिक अनुकूलित

डार्विन ने अपनी खोज के दौरान पाया कि कुछ चिड़ियों की चोंच लंबी है और कुछ की छोटी और मजबूत। यह फ़र्क जरूरत के अनुसार है। जिस जगह फूलों से चिड़ियों को रस निकालना पड़ा, वहाँ की चिड़ियों की चोंच लम्बी हो गई। साथ ही, जहां बीज उपलब्ध थे, वहाँ की चिड़ियों की चोंच छोटी और मजबूत हो गई।

हजारों सालों तक ऐसा क्रम चलता रहेगा। वातावरण के अनुकूल रहने वाली चिड़ियाँ फूलेगी-फलेगी और दूसरी लुप्त हो जाएगी।

यह डार्विन की थ्योरी ऑफ नेचुरल सेलेक्शन का एक उदाहरण है।

महिलाओं के विषय पर डार्विन के विवादस्पद विचार

12 वर्षों बाद, 1871 में, प्रकाशित अपनी पुस्तक **डिसेन्ट ऑफ मैन** में डार्विन ने स्त्रियों को पुरुषों के मुकाबले जैविक रूप से ही कमतर माना है.

अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा : “स्त्रियों और पुरुषों की क्षमताओं में बहुत अंतर होता है और पुरुष हर क्षेत्र मे स्त्रियों के मुकाबले अधिक सफलता हासिल करते हैं।”

डार्विन के इस महिलाओं से सम्बंधित तथाकथित ‘वैज्ञानिक तथ्य’ पर पुनर्विचार करने के लिए बॉस्टन की महिला आंदोलन की अग्रणी, श्रीमती कैरोलिन केनार्ड, ने उन्हें दिसम्बर, 1981, में पत्र लिखा।

डार्विन से एक महीने बाद मिले जवाब से कैरोलिन को घोर निराशा हुई। डार्विन ने दोहराया कि महिलाएं बुद्धि के स्तर पर पुरुषों से हीन होती हैं। साथ ही, उन्होंने जोड़ा कि अपनी जैविक असमानता पर काबू पाने के लिए महिलाओं को पुरुषों की तरह कमाने वाली होना पड़ेगा। वे यहीं नहीं रुकते हैं! वे आगे कहते हैं कि यह एक अच्छा ‘आइडिया’ नहीं होगा, कारण इससे छोटे बच्चों और घर की खुशहाली को नुकसान पहुँच सकता है!

कैरोलिन ने दूसरा पत्र लिखा कि महिलाओं का सामाजिक योगदान पुरुषों के बराबर ही होता है। कितना काम स्त्री और पुरुष करते हैं इसमे अंतर नहीं है, अंतर सिर्फ इतना है कि किस किस्म का काम करने की उन्हें इजाजत है। 19 वीं सदी मे महिलाओं को कई पेशों को करने, राजनीति में हिस्सेदारी और उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर पाबंदी थी।

इसी तरह, अमरीका में महिला आंदोलन मे सक्रिय, **एलिज़ा बर्ट गैम्बल**, ने भी डार्विन के महिलाओं के संदर्भ में दिए गए "वैज्ञानिक तर्क" को चुनौती दी। 1894 में, उन्होंने विकासवाद के ही सिद्धांत के आधार पर, अपनी किताब *The Evolution of Women: An Inquiry into the Dogma of Her Inferiority to Man* में तर्क दिया कि यदि मानव अपने से कमतर जानवरों के वंशज हैं, तब तो महिलाओं का घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहने या पुरुषों के अधीन रहने का कोई औचित्य नहीं है! उनके अनुसार, महिलाओं का घर पर बैठे रहना और पुरुषों पर आश्रित रहना पूर्णतः अप्राकृतिक है!

जेंडर समानता हमारा जैविक अधिकार है! यह उनकी घोषणा थी।

1916 में उन्होंने अपनी 1894 की किताब *The Evolution of Women* में संशोधन किया। उन्होंने स्पष्टता से कहा कि **पृथ्वी के जीवन के इतिहास में, प्रमाण की अटूट श्रृंखला, महिलाओं के महत्व को प्रमाणित करेगी**।

कई नारीवादियों ने डार्विन के सेक्स और जेन्डर सम्बंधित मुद्दों की उपेक्षा की कड़ी आलोचना की। ऐसा माना गया कि आधे मानव जाति (स्त्री) को अन्य आधे (पुरुष) द्वारा विकास के निचले चरण में रखा गया।

असलियत क्या है?

असलियत यह है कि डार्विन ने उन सामाजिक हालात को नजरंदाज कर दिया; जहां स्त्रियों को पुरुषों के मुकाबले बेहद कम अवसर मिलते हैं, और उनकी आजादी भी सीमित होती है।

डार्विन, जैसे वैज्ञानिक, भी पूर्वाग्रह के शिकार हो गए। उन्होंने, सामाजिक ढांचे की वजह से, समाज में मौजूद स्त्री-पुरुष असमानता को जैविक अंतर मान लिया। उनकी सोच विक्टोरियन युग के पुरुष-प्रधान नजरिया से प्रभावित ही है। अपनी पूरी बुद्धिमता के बावजूद स्त्रियों के प्रति उनका तर्क अवैज्ञानिक है।

निंदनीय और विचारणीय बात यह है कि आज भी कई वैज्ञानिक अपने तथाकथित शोधों में यह साबित करने का प्रयास करते हैं कि महिलाएं पुरुषों से अलग और निम्न दर्जे की हैं।

सामान अवसर मिलने पर महिलाएं अवश्य ही पुरुषों की बराबरी कर पायेंगी।

इतिहास के घेरे में

डॉ. किरन नाथ

जब से स्वयं सेवक संघ समर्थित सरकार सत्ता में आई है, इतिहास विषय उनके निशाने पर है। संघ अपने साम्प्रदायिक सोच को लोगों में प्रचारित करने के लिए इतिहास का हवाला देती रही है। अब, उन्होंने एन. सी. आर. टी. के दसवीं कक्षा के इतिहास के पाठ्यक्रम मे बदलाव किया है। इतिहास में केवल मुग़ल बादशाहों को ही पढ़ाया जाता रहा है और हिन्दू राजाओं को महत्व नहीं दिया गया। इसलिए, पाठ्यक्रम से मुगल बादशाहों को हटाया गया या उन्हें आततायी विदेशी और हिंदुओं पर जुल्म करने वाला एवं मंदिरों को तोड़ने वाला पढ़ाया जा रहा है।

अक्षय कुमार या अमित शाह पृथ्वीराज चौहान से लेकर हिन्दू राजाओं की लम्बी फेहरिस्त गिन रहे हैं, जिन्हें इतिहास में पढ़ाया गया। उनसे यह पूछना चाहिए कि जब इतिहास में नहीं पढ़ाया गया, तो उन्हें उनके बारे में जानकारी मिली कहाँ से? क्या उन्होंने ही शोध कर राजाओं का इतिहास खोज निकाला है? यह सब झूठ और भ्रम फैलाया जा रहा है। अपने राजनीतिक हितों को साधने के लिए यह कैसा खतरनाक कार्य है। इतिहास के एम. ए. के छात्र-छात्राओं, शोधार्थी और शिक्षाविदों पर इसका असर पड़ने वाला नहीं है। लेकिन, दसवीं तक के छात्रों की मानसिकता पर जो असर पड़ने वाला है, वह चिंता का विषय है।

सोशल मीडिया और टी. वी. चैनल प्रिन्ट मीडिया के द्वारा लगातार झूठा इतिहास परोसकर जिस तरह से पूरे देश में साम्प्रदायिक जहर फैलाया जा रहा है। उसका नतीजा है कि हत्या, दंगा-फसाद में पूरा देश आज जल रहा है। युवाओं को दंगाई बना ही चुके; अब नई पौध को दंगाई बनाने का काम इतिहास पढ़ाकर किया जाएगा।

इतिहास विषय नहीं बल्कि अनेक विषयों का इतिहास है। यह केवल राजाओं और बादशाहों का ही इतिहास नहीं है, इतिहास का कलेवर बहुत व्यापक है, चाहे आप विज्ञान, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र या कला की पढ़ाई करें। सबसे पहले तो उसके विकासक्रम और आविष्कारों, दार्शनिकों, राजनीतिकों, विचारकों और कलाविदों के इतिहास को पढ़ाया जाता है। अब तो नारी आंदोलन या

महिलाओं की दशाओं पर भी ऐतिहासिक शोध किया जा रहा है। इतिहासकार अब वैज्ञानिक तकनीकी - कार्बन डेटिंग, डी. एन. ए. टेस्ट, सिक्कों और भाषा – जैसे, प्राथमिक स्त्रोतों की सहायता से अधिक सटीक और तथ्यपरक इतिहास लेखन कर रहे हैं। नए-नए विषयों को लेकर ऐतिहासिक अध्ययन हो रहा है और पढ़ाया भी जा रहा है, क्या यह सही नहीं होगा कि इतिहास के पाठ्यक्रम को तैयार करने और पढ़ाने के काम को विद्वानों, अकैडमीशियन और इतिहासकारों, पुराविदों पर छोड़ देना चाहिए।

अपने राजनीतिक हितों और स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिक चश्मे से हर विषय की व्याख्या करना मानवता के हित में नहीं है। मानवता और सुख-शांति की व्यवस्था के पैरोकार, महान विभूतियों, के इतिहास को पढ़ाया जाना चाहिए।

कहा जाता है कि इतिहास की गलतियों से सीख लेनी चाहिए। इतिहास को दोहराने की गलती नहीं करनी चाहिए।

कनक : स्मृति शेष

डॉ. किरन नाथ

1977 का चुनाव इमरजेंसी के बाद घोषित किया गया। जे. पी. ने इसे तानाशाही बनाम लोकतंत्र का नारा दिया। हम छात्र-छात्राएं भी प्रचार में निकल पड़े। लखियार भवन, कदमकुआँ, से चार-चार के ग्रुप में दिनभर ऑटो से पटना और उसके आस-पास के गावों में घूमते। कनक, मणिमाला के साथ मैं रहती थी।

कनक के साथ, बाद के दिनों में भी, छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी के कार्यक्रमों के तहत काम किया। बहुत ही हँसमुख चेहरा था; और लोगों से जुड़ने और बातचीत का तरीका भी इतना मधुर और आत्मीय भरा होता था कि लोग उससे तुरंत जुड़कर अपना दुख-दर्द बांटने लगते। वो खोजती ही थी ऐसे अभावग्रस्त शोषित दुखी लोगों को।

एक बार एक टूटी मड़ैया पर एक औरत अपने अधनंगे तीन बच्चों के साथ एक ही थाली में मुठ्ठी भर भात टुँग रही थी। कनक सबको छोड़कर उसके पास पहुंची। वह औरत सकपकाई कि कोई कलक्टर या सरकारी अधिकारी तो नहीं! कनक ने हँसकर कहा, "तोर बेटा-बेटी भी कलक्टर बन सकत हौ!"

इस तरह वह शोषित वंचितों की आवाज बनती गई! इतनी क्रांतिकारी प्रखर आवाज लेकिन मुलामीयत और आत्मीयता भरी वह खो गई।

कनक की वही आवाज और विचारों को 'स्त्रीशब्द' – एक आजीवन समाजकर्मी के लेखों का संकलन के माध्यम से जिंदा रहेगी।

पुस्तक परिचय

कनक, **स्त्रीशब्द** (रांची: किरण प्रकाशक, 2022)
मूल्य : रु 200/-, पृष्ठ – 272
(Email: kiran08.nishu@gmail.com
Mobile: 6207553637,9431392455)

स्त्रीशब्द, एक आजीवन समाजकर्मी, कनक (05.09.56-02.05.21) के लेखों का संकलन है। यह संकलन समाज को बेहतर बनाने में लगे, तमाम संघर्षों को, संघर्षकर्मियों को और खास कर स्त्रीवादियों को ... समर्पित है।

लेखिका, कनक, संघर्ष वाहिनी की प्रांतीय (बिहार) की संयोजक और बोधगया भूमि आंदोलन से जुड़ी रही हैं। इस किताब में कनक के 'स्त्री प्रश्न' के अंतर्गत 39 लेख हैं, और 'विविध' शीर्षक के तहत 41 लेख प्रकाशित हुए हैं। स्त्री प्रश्न के अंतर्गत शामिल कुछ लेखों के ज्वलंत विषय हैं – साड़ी-सिंदूर संस्कृति, गाली-गलौज, डायन, विवाहेतर सम्बंध, महिलाओं की सुरक्षा, इत्यादि।

इसके अलावा, किरण का 'संभवा' समूह की ओर से तथा मंथन द्वारा 'लेखक के बारे में' आलेख शामिल हैं।

"जब है नारी में शक्ति सारी,

तो फिर क्यों नारी को कहे बेचारी।"

स्त्री-पुरुष तुलना
(एक अंश)

ताराबाई शिंदे

आजकल सभी अखबारों में अबलाओं के बारे में बहुत कुछ लिखा जाता है, फिर भी यह महान अर्थ मिटाने के लिए आप में से कोई भी प्रयास नहीं कर रहा है, इसका कारण क्या होगा?

पुनर्विवाह न करने की प्रथा महान बीमारी के समान जगह-जगह और विविध जातियों में फैली है। इसके कारण कितनी ही महिलाएं वैधव्य की असहनीय पीड़ा न जाने किस प्रकार अनुभव कर रही हैं। इसके कारण कितने अनर्थ होते हैं और किस प्रकार इनकी संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। इसकी कल्पना भी नामुमकिन लगती है। क्योंकि, मनुष्य-समाज में रहकर केवल मनोनिग्रह से स्त्री-धर्म की रक्षा करना असम्भव है। मन और आँखों के कारण ही सही, लेकिन वे दोषी ठहराई जाती हैं। बाल काटकर और सिंदूर मिटा कर उसका (नारी का) सौभाग्य छीन लिया तो क्या हुआ? उसका मन और सही-गलत विचार करने की क्षमता तो उसके पास ही है। बाह्य रीति से उसे लूटने के बाद भी उसका अंत:करण कौन लूट सकता है? और स्त्री-धर्म का अर्थ भी क्या है?

पति की आज्ञा का पालन करना, उसके मन के मुताबिक बर्ताव करना, पति ने यदि लताड़ दिया, गालियां दीं, दूसरी स्त्रियों के साथ सम्बंध रखे, शराब पी, जुआ खेल, चोरी करके, किसी को मारकर, चुगली करके, खजाना लूटकर, रिश्वत खाकर चिल्लाता हुआ भी यदि घर आए तो भी यह मानकर कि कोई बड़ा कृष्ण महाराज ही आया है, उसका हँसकर स्वागत करना, उसकी सेवा करना, यही तो है ना आपका स्त्री-धर्म? परंतु जहां भला-बुरा सोचने की शक्ति हो, वहाँ यह नारी-धर्म कैसे टिक पायेगा? जहां विचार हो वहाँ विकल्प तो आएंगे ही। परद्वार स्वीकारने से ही पतिव्रत्य धर्म नष्ट नहीं होता, बल्कि उसके कई और कारण भी हैं। पति को ईश्वरस्वरूप मानकर आज उसकी पूजा कौन स्त्री करेगी? **सावित्री आख्यान** में पतिव्रता धर्म का विश्लेषण किया गया है। एक मिसाल दे सकते हैं कि आज कौन-सी नारी इसके अनुसार बर्ताव करती है?

सावित्री आख्यान कहता है कि पति ने लताड़ दिया तो हंस कर नरम स्वर में पति से कहना चाहिए – 'आप मत मारो, आपके पाँव में दर्द होगा' – पति के पैर दबाने चाहिए। आख्यान कहता है कि पति मुक्कों से, लकड़ी से पिटाई करे तो रोना छोड़कर उलटे मक्खन लेकर, घर में मक्खन न हो तो पड़ोसी से माँगकर, बाज़ार से लाकर पति के हाथों में लगाना चाहिए। जो चीज़ पति नापसंद करता हो वह चीज़ पत्नी को भी त्याग देनी चाहिए। परंतु वास्तविकता तो अलग ही है। कौन स्त्री आज ऐसा करती है? पति के हाथों को मक्खन लगाने के बजाय वह कहती है, 'पीटने वाले के हाथ जल जाएं।' पति जो चीज़ नापसंद करता है, उसे ही स्त्री खाती है। बस चीज़ नमकीन या मीठी होनी चाहिए। पति यदि आम न खाता हो तो पत्नी उसे थोड़े ही खाना छोड़ देगी। आज पति ने प्यास बुझाने के लिए पानी की माँग की तो हो सकता है कि पत्नी कहे, 'मुझे भी बड़ी प्यास लगी है, वहाँ लोटा भरा पड़ा है। आप भी पी लीजिए और जरा मुझे भी दे दीजिए। यह बच्चा मुझे जगह से उठने ही नहीं देता। क्या करूँ?'

स्त्री अध्ययन : एक परिचय, सम्पादक - उमा चक्रवर्ती, साधना आर्य (नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2021)

मूल्य : रु 499/-, पृष्ठ – 456

सविधान ने सालों पहले कह दिया था कि औरत और मर्द बराबर हैं, पर समाज को ये अब तक समझ नहीं आया.

कमला भसीन